महामुनि व्यास की शिवोपासना

परम्परा से यह प्रसिद्धि है कि समस्त आगम-ग्रन्थों के रचयिता या वक्ता भगवान् शंकर ही हैं। 'आगम' शब्द की व्युत्पत्ति में कुलार्णव आदि तन्त्रों में कहा गया है कि शिव के मुख से निकलने और भगवती पार्वती के कानों में प्रविष्ट होने के कारण इनका नाम 'आगम' पड़ा। 'आगम' शब्द की प्रसिद्धि **'आगतं शिववक्त्रेभ्यो गतं च गिरिजाश्रुतौ। तस्मादागम इत्युक्तं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।।'**-से हुई। इसीलिये भगवान् शिव को समस्त विद्याओं का मूलस्रोत, उद्गमस्थान या विद्यातीर्थ भी कहा जाता है-**'यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्। निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम्।।'** जैसे भगवान् शंकर समस्त विद्याओं के प्रवक्ता हैं, ठीक उसी तरह व्यासजी भी पुराणादि शास्त्रों के निर्माता या वक्ता कहे गये हैं। व्यासजी समस्त वेदों के बार-बार उपनिबन्धन करने के कारण 'वेदव्यास' नाम से प्रसिद्ध हैं। इतिहास, पुराण, उपपुराण, ब्रह्मसूत्र, बृहद्व्यासस्मृति आदि धर्मशास्त्रों, योगदर्शन आदि के भाष्यों के रचयिता होने के कारण और **'यन्न भारते तन्न भारते', 'व्यासोच्छिष्टं जगत् सर्वम्'** आदि के अनुसार विश्व का सारा ज्ञान-विज्ञान भगवान् व्यास का उच्छिष्ट ही है। अतः **'व्यासो नारायणः साक्षात्'** के अनुसार व्यासजी साक्षात् नारायण और शिव ही हैं। शिवपुराण, स्कन्दपुराण, वायुपुराण, ब्रह्माण्डपुराण आदि प्रायः अधिकांश पुराणों-उपपुराणों में विशुद्ध शिव-महिमा ही भरी पड़ी है। केवल संहितात्मक और खण्डात्मक स्कन्दपुराण में ही प्रायः दो लाख के लगभग अत्यन्त श्रेष्ठ ज्ञानवर्धक सुन्दर श्लोक हैं। वे सब-के-सब प्रायः शिव-महिमा से ही ओत-प्रोत हैं। इसीलिये शूलपाणि ने तो **'शेषेण भगवान् भवः'** कहकर प्रायः सभी पुराणों को शिवपरक ही माना है। ये तथ्य वेदव्यास के शिव-प्रेम के ही निदर्शक हैं।

वेदव्यासजी आशुतोष भगवान् शिव के अनन्य भक्त हैं। उन्होंने कई शिवलिङ्गों की स्थापना कर उनकी अर्चना की । काशी तथा रामनगर में कई व्यासेश्वर शिवलिङ्ग हैं। रामनगर से प्रायः तीन किलोमीटर पूर्व व्यासजी का मन्दिर है। उसमें व्यासदेवजी के साथ भगवान् शंकर भी विराजमान हैं। यहाँ व्यास-पूर्णिमा को बड़ा भारी मेला लगता है, यहाँ दूर-दूर से दर्शनार्थी दर्शन के लिये आते हैं। वहीं से थोड़ी दूर पर प्रायः एक किलोमीटर लंबा-चौड़ा बड़ा-सा पक्का तालाब है, जो प्राचीन पत्थरों से सुबद्ध है, जिसके चारों ओर छोटे-बड़े अनेकों शिवलिङ्ग और मन्दिर हैं। स्कन्दपुराण के काशीखण्ड के अनुसार व्यासदेव यहीं रहकर सदाशिव की उपासना करते थे और दूर से ही भगवान् विश्वनाथ पर सदा दृष्टि लगाये रहते थे। प्रत्येक चतुर्दशी को भगवान् विश्वनाथ एवं अन्नपूर्णा का दर्शन करते थे। यह कथा काशीखण्ड के प्रायः अन्तिम पाँच अध्यायों में विस्तार से प्रतिपादित है। काशीराज के दुर्ग के पश्चिम तरफ गङ्गा-तट पर एक विशाल ताम्रमय शिवलिङ्ग है, जो लगभग तीन हाथ ऊँचा और

तदनुरूप ही स्थूल वृत्ताकार एवं रक्तवर्ण का है।

शिवपुराण में वर्णन आया है कि एक बार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष देनेवाले तीर्थराज प्रयाग, नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्र, हरिद्वार, अवन्तिका, अयोध्या, मथुरा, अमरावती, सरस्वती, सिन्धु, गङ्गासागर आदि तीर्थों में भ्रमण करते हुए श्रीव्यासजी उस अविमुक्त-क्षेत्र में पहुँचे, जहाँ जगत्पिता भगवान् विश्वेश्वर तथा जगन्माता भगवती श्रीअन्नपूर्णा देवी विराजमान हैं। यहाँ आकर उन्होंने समस्त देवी-देवताओं के दर्शन किये और शास्त्र-विधि से समस्त वापी-कूप-सरोवर तथा कुण्डों में यथाविधि स्नान-दान करते हुए मणिकर्णिका-घाट पर विश्राम किया । तदनन्तर विनायक आदि देवगणों को संतुष्ट करके आलस्यरहित हो पितृतीर्थों में श्राद्ध-तर्पण किया। इस प्रकार काशी की पञ्चक्रोशयात्रा करके पुण्यात्मा व्यासजी ने 'व्यासेश्वर' नामक शिवलिङ्ग की स्थापना की, जिनके दर्शन-पूजन से मनुष्य सब विद्याओं में बृहस्पति[1] के समान विद्वान् हो जाते हैं।

एक बार व्यासमुनि अपने शिष्यों को पढ़ाकर विश्राम कर रहे थे। इसी समय एकाएक उनके मन में ग्रन्थ रचने की इच्छा उत्पन्न हो गयी। वे सोचने लगे कि किस देवी या देवता के आराधन से मुझमें ग्रन्थ रचने की शक्ति होगी। सोचते-सोचते सांय-संध्या का समय आ पहुँचा। सायंकालीन संध्योपासन के पश्चात् मुनिवर व्यासजी समाधिस्थ होकर अपने इष्टदेव शंकरजी के ध्यान में लग गये। इस तरह ध्यान करते-करते कुछ समय बीता। थोड़े दिनों बाद एक जर्जरकाय जटाधारी तपस्वी उनके सामने आये। व्यासजी ने नेत्र खोलकर देखा और सामने आये हुए महान् तेजस्वी महात्मा से पूछा-

महात्मन्! किस शिवलिङ्ग के आराधन से हमारी मनःकामना सिद्ध होगी और संसार में ग्रन्थ-रचना की शक्ति का प्रादुर्भाव कैसे होगा? क्योंकि ऋषियों द्वारा मैंने शिवजी के अनेक नाम सुने हैं, जिनमें (1) ओंकारनाथ, (2) कृत्तिवासेश्वर, (3) केदारेश्वर, (4) कामेश, (5) चन्द्रेश, (6) कलशेश्वर, (7) जाम्बुकेश, (8) जैगीषेश्वर, (9) दशाश्वमेधेश्वर, (10) द्रुमचण्डकेश, (11) गरुडेश, (12) गोकर्णेश, (13) गणेश्वर, (14) धर्मेश, (15) प्रसन्नवदनेश, (16) तारकेश्वर, (17) मरुतेश, (18) नन्दिकेश, (19) निवासेश, (20) पत्रीश, (21) पशुपति, (22) हाटकेश्वर, (23) तिलभाण्डेश, (24) भारभूतेश्वर, (25) विश्वेश्वर, (26) मुक्तिनाथ, (27) अमृतेश, (28) भुवनेश्वर (29) विश्वेश्वर (30) सिद्धेश्वर, (31) अजेश्वर, (32) पार्वतीश्वर, (33) हिरण्यगर्भेश, (34) रामेश्वर, (35) स्थानेश्वर, (36) रत्नेश, (37) कोटिरुद्रेश्वर, (38) कमलेश्वर, (39) वीरेश्वर (40) मध्यमेश्वर इत्यादि[2] - अनेक शिवलिङ्ग विख्यात हैं।

---

1. **स्थापयामास पुण्यात्मा लिङ्गं व्योसेश्वराभिधम्।**
   यद्दर्शनाद्भवेद्विप्रा नरो विद्यासु वाक्पतिः।। (शि., पु., उमासं., 44/57)
2. **किं वा हिरण्यगर्भेशं किं वा श्रीमध्यमेश्वरम्।**
   इत्यादि कोटिलिङ्गानां मध्येऽहं किमुपाश्रये।। (शि. पु., उमासं. 44/73)

उस महात्मा ने कहा कि यों तो सभी शिवलिङ्ग समान हैं और सबकी आराधना से आशुतोष भगवान् शीघ्र प्रसन्न होते हैं, परन्तु आप 'मध्यमेश्वर'[1] महादेव का ध्यान-पूजन करें तो सर्वोत्तम होगा। काशीखण्ड में मध्यमेश्वर नामक शिवलिङ्ग का माहात्म्य अवर्णनीय कहा गया है, जिनका दर्शन करने के लिये समस्त देवता प्रतिपर्व में वहाँ आते हैं, जिनकी सेवा से कितने ही देवी-देवता और यक्ष-गन्धर्व सिद्ध हो गये हैं। गन्धर्वराज 'तुम्बुरु' और देवर्षि नारद महादेव की आराधना से ही संगीतशास्त्र में प्रवीण हुए हैं। इन्हीं की आराधना से ब्रह्मा सृष्टि, भगवान् विष्णु पालन और रुद्र प्रलयकाल में इस संसार का संहार करते हैं। इन्हीं की कृपा से शेषनाग समस्त पृथ्वी को अपने ऊपर धारण किये हुए हैं। कहाँतक कहा जाय सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि और वायु सभी चराचर देव-दानव एवं मनुष्य अपने-अपने अधिकार पर स्थिर रहते हुए सिद्धि प्राप्त करते रहते हैं।

उस महात्मा के ऐसे वचन सुनकर व्यासजी ध्यानमग्न हो गये और फिर नेत्र खोलने पर उस महात्मा को उन्होंने नहीं देखा। तब अन्तर्धान हुआ जानकर उनके हृदय में मध्यमेश्वर शिवलिङ्ग की आराधना का दृढ़ निश्चय हो गया।

फिर क्या था, दूसरे ही दिन से नित्य नियमपूर्वक फलाहार करते हुए श्रीव्यासजी मध्यमेश्वर शिवलिङ्ग की आराधना करने लगे। कुछ दिनों बाद एक दिन व्यासजी पूजा के बाद भगवान् की स्तुति कर रहे थे कि जगत्पिता परमेश्वर शंकरजी बालयोगी के वेष में प्रत्यक्ष हो गये और श्रीव्यासजी इस प्रकार उनकी स्तुति करने लगे-

'हे देवाधिदेव! हे महाभाग! हे शरणागतवत्सल ! हे उमापते! वेद भी आपकी महिमा को नहीं जानते हैं। आप ही संसार के उत्पादक, पालक और संहारक हैं। हे सदाशिव! आप सभी देवताओं में प्रमुख हैं, सच्चिदानन्द हैं, आप त्रिलोकी के मनोरथों को पूर्ण करते रहते हैं; देवता, योगीन्द्र और मुनीन्द्र भी आपके तत्त्व को नहीं जानते। आप भक्तों के हृदय में स्थित हैं, आपको प्रणाम है।'

महामुनि श्रीव्यासजी के स्तुति करने पर भगवान् शंकर प्रसन्न हुए और मनोवाञ्छित वरदान देकर तथा उनके कण्ठ में स्थित होकर ग्रन्थ-रचना की शक्ति देकर अन्तर्धान हो गये। तब से मध्यमेश्वर महादेव की ख्याति और भी बढ़ गयी। जो मनुष्य उनकी पूजा और नित्य दर्शन करता है, वह निश्चय ही यशस्वी कवि और श्रीव्यासजी के समान पुराण-इतिहास का प्रसिद्ध लेखक हो जाता है। उन्हीं की कृपा से व्यासजी अमर हो गये और पुराणादि शास्त्रों के स्रष्टा बन गये।

एवं लब्धवरो व्यासो महेशान्मध्यमेश्वरात्।
अष्टादश पुराणानि प्रणिनाय स्वलीलया।। (शिवपु. उमासं. 44/119)

---

1. (क) **अतः सेव्यो महादेवो मध्यमेश्वरसंज्ञकः।**
अस्याराधनतो विप्रा बहवः सिद्धिमागताः।। (शि. पु., उमासं. 44/79)

(ख) मध्यमेश्वर शिवलिङ्ग, पावन पुरी काशी में कंपनीबाग से उत्तर बारादरी के निकट स्थित है।

स्कन्दपुराण के काशीखण्ड के अन्त में व्यासजी की शिवोपासना-सम्बन्धी एक सुन्दर कथा आयी है। वैसे तो व्यासजी के भारत तथा भारत के बाहर भी ऐतिहासिक लोग अनेकों आश्रम मानते हैं। पुराणों तथा 'कल्याण' के 'तीर्थाङ्क' में भी उनके कई आश्रम निर्दिष्ट हैं। काशीखण्ड के अनुसार नीलकण्ठ महादेव के पास एक गुफा है, जिसमें रहकर उन्होंने अधिकांश पुराणों की रचना की थी। अकेले काशी में ही कई स्थानों पर उनके रहने की चर्चा है। काशीखण्ड के अनुसार उनके प्राय: दस हजार शिष्य थे। भाग्यचक्र किसी को नहीं छोड़ता। एक बार कुछ संयोग ऐसा हुआ कि वे तीन दिनोंतक समूची काशी में भिक्षा के लिये अपने शिष्य-मण्डली के साथ घूमते रह गये, पर उन्हें कहीं भिक्षा न मिल सकी। इससे वे महाविरक्त तपस्वी काशीनिवासी धनियों पर बहुत क्रुद्ध हुए और बोले कि इन धनियों के पास कोई भी कमी नहीं है, पर ये धर्मनिरपेक्ष और आचार-विचार से च्युत होकर धन के मद में प्रमत्त हो गये हैं। अत: अब काशी में इनके दो पीढ़ी से अधिक धन नहीं रहेगा और दो पीढ़ियों से अधिक मुक्ति भी नहीं मिलेगी। यहाँ के विद्वान् पण्डितों ने भी ध्यान नहीं दिया तथा हमसे और हमारे शिष्यों से बात भी न की। इसलिये दो पीढ़ी से अधिक किसी वंश में सरस्वती(विद्या) भी नहीं रहेगी-

मा भूत् त्रैपुरुषी विद्या मा भूत् त्रैपुरुषं धनम्।
मा भूत् त्रैपुरुषी मुक्तिः काशीं व्यासः शपन्निति।।

(स्क. पु. काशी ख. 96/125)

फिर क्या था, तुरन्त एक बड़ा आश्चर्य हुआ। एक घर से अन्नपूर्णा-जैसी देवी बाहर आयी और सभी शिष्योंसहित व्यासदेवजी को घर में ले जाकर सादर भोजन करा दिया। भोजन, पान और दक्षिणा आदि के बाद गृहपति भी उठे और उनसे कहा कि 'महाराज! आपने जो शाप दिया वह तो ठीक है, लेकिन आप में व्यवसायात्मिका बुद्धि और सहिष्णुता की अभी कुछ कमी है। क्रोध के कारण ही मनुष्य शाप देता है। काशी में क्रोधी व्यक्ति की आवश्यकता नहीं। उसके लिये यहाँ कोई स्थान नहीं होना चाहिये। अत: आप कृपया काशी से कहीं बाहर ही रहें और भिक्षा के लिये कभी-कभी प्रतिपक्ष आ जाया करें।' वास्तव में वे भगवान् विश्वनाथ एवं अन्नपूर्णा ही थे। तभी से व्यासजी रामनगर में निवास करने लगे।

(यह लेख गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित कल्याण के 'शिवोपासनांक' से लिया गया है।)